Chap-4

चतुर्थ अध्याय

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी की प्रमुख कथाकृतियों का अनुशीलन

जैसा कि विगत अध्यायों से स्पष्ट किया जा चुका है कि वाल्मीकि त्रिपाठी के कथा-साहित्य का मुख्य केन्द्र इतिहास और राजनीति पर स्थिर रहा है, उनके सामाजिक उपन्यास समाज में व्याप्त विसंगतियों और संकुचित मनोवृत्तियों को अनेक कोणों से देखते परखते हैं। जहाँ कथानक कल्पना के आकाश में विचरण करता है, किन्तु इतिहास-प्रधान कथानक में इस प्रकार के लम्बे-चौडे गल्प संभव नहीं हैं। पात्रों के मनोविश्लेषण और कथ्य का परोक्ष इंगित भले ही उसे प्रासंगिक सन्दर्भो से जोड़ दे, लेकिन कथाकार इतिहास के मान्य प्रसंगों को भ्रष्ट करने का अधिकारी नहीं है । डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों में पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा संवादों के द्वारा कथ्य के व्यापक ध्वन्यार्थ बोध को प्रकट किया गया है, जो सामयिक युग-धर्मिता से जुड़े हुए हैं। कथाकार ने कहीं भी ऐतिह्य तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर के या विकृत करके प्रस्तुत नहीं किया है। उनकी औपन्यासिक कृतियों का वर्ण्य-परिचय विगत अध्याय में दे चुके हैं। यहाँ हम विवेचन एवम् विश्लेषण के स्तर पर उनके ऐतिहासिक उपन्यास कृतियों को व्याख्यायित करना चाहेंगे।

वैसे तो वाल्मीकि त्रिपाठी ने अपने अधिकांश उपन्यासों में ऐतिहासिक या पौराणिक पात्रों के माध्यम से कुछ प्रासंगिक कथ्यों को उभारने की चेष्टा की है, किन्तु कहीं-कहीं आधुनिक सामाजिक विसंगतियों के तहत वह अधिक उग्र और प्रखर वक्ता बनकर भी सामने

आए हैं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानक मात्र इतिहास कथाओं की पुनर्वाचन के लिए व्यग्र नहीं है, किन्तु वह इन कथ्यों के माध्यम से समसामयिक परिस्थितियों को परीक्षीत करके भी कुछ प्रासंगिक वक्तव्य देने के मूड़ में दिखाई देते हैं। वैसे तो उनके सभी उपन्यास परोक्ष कथ्यों एवं सम्वादों के सांकेतिक अभिप्रायों से संलग्न हैं, किन्तु विशेषकर उनके ऐतिहासिक उपन्यास समाज की सामाजिक विसंगतियों का लेखा-जोखा अवश्य प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के रुप में प्रजाप्रिय प्रजेश, दुरभि-संधि, जय-विजय, महाराज आदि उपन्यासों को देखा जा सकता है। इनमें 'जय-विजय' उपन्यास की भूमिका में ही उपन्यासकार ने हेमू के एक विशेष व्यक्तित्व को इस प्रकार उभारा है, कि वह समाज में अपनी नगण्यता के कारण एक अर्थहीन जिन्दगी को जीता हुआ भी किस तरह उपन्यास के नायक पद पर आरुढ़ होकर अपने महत्व को प्रतिपादित करता है, जहाँ तक हेमू के सामाजिक सरोकार का प्रश्न है वह किसी अहम् भूमिका के साथ जुड़ा हुआ दिखाई नहीं देता, किन्तु उसका अपना एक प्रभामंडल अवश्य है, जिसके तहत वह अपनी अंतरंग परिस्थितियों को चुनौती देता हुआ, अपनी अस्मिता को स्थापित करने के लिए व्यग्र होता है। पानीपत के द्वितीय युद्ध में हेमू की भूमिका एक सैन्य संचालक के रुप में सामने आती है, वह अफगान शक्ति का संचालक बनकर महान् मुगल शक्ति के सेनानायक बैरम खाँ से भिड़ जाता है, इसी टकराव में सैयद वंश की पराजय और लोदी वंश की स्थापना का महत्वपूर्ण अध्याय शुरु होता है। इब्राहिम लोदी की संकुचित दृष्टि के कारण दिल्ली का शहनशाह बाबर बन जाता है, और बाबर के बाद उसके पुत्र हुमाऊं को पदच्युत करके शेरशाह पदासीन हो जाता है। वैसे तो, शेरशाह हेमू जय-विजय में एक अहम् भूमिका का निर्वाह करता है, फिर भी उसका परिवेश मध्यवर्गीय जीजिविषा से जुड़ा हुआ है। वह सतत् संघर्षशील होकर अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए अपने व्यक्तित्व प्रतिष्ठापित करता है। हेमू की पत्नी राधा की स्थापना कथाकार की काल्पनिक सृष्टि है। ऐतिह्य तथ्यों में हेमू की पत्नी राधा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। कथाकार यदि राधा की सृष्टि नहीं करता तो हेमू की पारिवारिक सामाजिकता भी अधिक सुस्पष्ट नहीं हो पाती।

इस उपन्यास में इतिहास और कल्पना का बड़ा ही मणिकांचन सहयोग रहा है, जैसे 'जय-विजय' का प्रमुख कथानक तो ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है, किन्तु पात्रों की

परिकल्पनाएँ और घटनाओं के विशद् वर्णन उसे एक सार्थक अभिप्राय से जोड़ने में सक्षम हुए हैं। शेरशाह और हेमू ऐतिहासिक पात्र हैं, लेकिन हेमू की राधा तथा राधा और हेमू को मिलानेवाला डाकू बुलासिंह सर्वथा कल्पनाधारित है। शेरशाह का कालिंजर अभियान ऐतिहासिक है, किन्तु सुरंग की घटना को सजीवता देने के लिए हेमू की संयोजना काल्पनिक है।

हेमू ईशा खाँ का पीछा करता है, शेर-शेरनी के शिकार में हेमू अपने अपूर्व शौर्य का परिचय देता है। इसी दरम्यान हेमू घायल हो जाता है, तथा बादशाह सलामत का स्वयं आकर हेमू की देखभाल करना आदि नितांत काल्पनिक तथ्य हैं, जो हेमू के व्यक्तित्व को प्रभावक बनाने में समर्थ हुए हैं। इस प्रकार जय-विजय का नायक हेमचन्द्र (हेमू) ना तो कोई बादशाह है, न कोई अपूर्व योद्धा, वह पराजित भी होता है, घायल भी होता है, अवसाद और वेदना से त्रस्त होकर भयभीत भी होता है, किन्तु कथाकार उसके ओजस व्यक्तित्व को अनेक कथ्यों एवं कथाओं से सम्पृक्त करके आभावान बना देता है।

हेमू राधा के लिए एक सम्बन्ध मात्र ही नहीं है, किन्तु वह नारी अस्मिता के स्वातन्त्र्य का पक्षधर भी है। राधा और हेमू के एक संवाद के द्वारा यह स्पष्ट होता है, जैसे - "नहीं राधा, यदि तुम्हारी तरह सभी नारियाँ सक्षम हो सकतीं तो इस संसार का रुप कुछ और ही होता। अत्याचार के स्थान पर सदाचार होता; घृणा की अपेक्षा प्रेम का साम्राज्य होता; स्वार्थ का स्थान सहिष्णुता एवं त्याग ने ग्रहण किया होता; विनाशमयी भावनाओं - गतिविधियों को निर्माणकारी विचारों-प्रयत्नों के समक्ष पराजित होना पड़ता।"[1] इसी तरह एक अन्य स्थान पर राधा के द्वारा कथाकार सामान्य हिन्दू औरत की बाध्यताओं को रेखांकित करता हुआ कहता है कि - "फिर भी, उसे आप जिन्दगी कहते हैं! जिन्दा मौत है - मौत। हिन्दू औरत जिन्दा नहीं रहती, जिन्दा रखी जाती है, सिर्फ मर्दो के जरिये अपने मतलब के लिए, वरना जानवरों से भी गई बीती जिन्दगी जीना कौन पसन्द करेगा, और जानवर भी कम-से-कम दिन भर काम करने के बाद पेट की आग बुझा, आराम से सोता है, मगर औरत, रात में भी चैन से नहीं सोने पाती। और, शायद, हुजूर ने गौर किया हो कि हिन्दू औरत को जिन्दा जलना पड़ता है। मर्द उसे अपनी मौत के बाद भी सेवा करने के लिए नर्क तक में घसीट ले जाते हैं।"[2] एक स्थान

पर राधा गरीब और दौलतमन्द के बीच हो रहे वार्तालाप को एक सामाजिक समस्या का रुप बतलाते हुए अपने संवाद में कहती है – "क्योंकि गरीब इन्सान वैसा ही है जैसे बिना पंखों का पक्षी या बिना मस्तूलों का जहाज। जिन्दा आदमी के लिए गरीबी से बढ़कर दूसरा अभिशाप नहीं। यह सभी बुराइयों की जड़ है। इस दुनियाँ में इन्सान की हैसियत से जीने के लिए दौलत उतनी ही जरुरी है जितनी साँस लेने के लिए हवा।"[3]

इस तरह 'जय-विजय' उपन्यास ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित होता हुआ भी सामाजिक सरोकार से जुड़ा हुआ अधुनातन पक्ष का पक्षधर है, जहाँ रुढ़ियों और दलित परम्पराओं का निषेध अंकित किया गया है।

'जहाँदारशाह' उपन्यास उत्तर मुगलकालीन ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें सम्राट जहाँदारशाह और उनके तीनों भाइयों जहानशाह, अजीमुश्शानशाह और रफीउश्शान के मध्य संघर्ष की गाथा को इस उपन्यास का केन्द्रबिन्दु बनाया है। इस उपन्यास के सभी पात्रों ने अपनी-अपनी भूमिका में एक महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त किया है। इन सभी पात्रों में से कुछेक ऐसे भी हैं, जो कथावस्तु की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जैसे जुल्फिकार खाँ जो प्रधानमंत्री के पद पर आसीन है। जुल्फिकार खाँ का बेगम लालकुँअरि के साथ पारस्परिक सम्बन्ध है, और जिसे लेखक ने मुख्य रुप से लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुना है। इस रचना के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं, और उनसे सम्बन्धित घटनाएँ भी ऐतिहासिक ही हैं। अगर इसकी कथावस्तु पर नज़र डालें तो जैसे – बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् रफीउश्शान का राजा बनना, जुल्फिकार खाँ के कुशाग्र बुद्धि जहाँदारशाह का उसे युद्ध में पराजित करना, बेगम लाल के हाथों में बागडोर पहुँचना, बादशाह का बेगम के इशारों पर नाचना, अन्य दोनों शाहजादों का जहाँदारशाह से टकराना और पराजय का मुँह देखना, तथा अन्त में रफीउश्शानशाह के बेटे फर्रुखसियर के हाथों जहाँदारशाह का पराजित होना आदि सभी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं, जिन्हें हम इतिहास के पन्नों पर बाखूबी तलाश कर सकते हैं, परन्तु ऐतिहासिकता के साथ-साथ लेखक ने काल्पनिकता को भी कम नहीं दर्शाया है। कई घटनाएँ काल्पनिक भी हैं – जैसे –

लाहौर नगर में जहाँदारशाह का वेश्या के कोठे पर जाना, गाड़ीखाने में रात बिताना, तालाब में नंगे स्नान करना, जुहरा का बेगम और खॉ साहब के मध्य सूत्रधार बनना, आगरे की कोठी में बेगम का कैद होना और बादशाह का मारा जाना आदि।

ये घटनाएँ वैसे तो ऐतिहासिक घटनाओं को परस्पर जोड़ती तो नहीं है, परन्तु उनकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करने में सहायता जरुर करती है। ऐतिहासिकता और काल्पनिकता इतनी संगुम्फित हो गई हैं, कि कथा की दृष्टि से ये एक-दूसरे की पूरक प्रतीत होती हैं।

वैसे, इन काल्पनिक घटनाओं के कारण इतिहास-रस कहीं भी बाधित होता हुआ दिखाई नहीं देता। इसमें लेखक ने जहाँदारशाह को मुख्य नायक और बेगम लालकुँअरि को मुख्य नायिका के रुप में प्रतिष्ठापित किया है। इसका नायक कोई वीर योद्धा नहीं है, बल्कि एक विलासी और अकर्मण्य शाहजादा है, जो सुरा और सुन्दरी को ही जीवन का आदि और अन्त समझता है। बेगम लालकुँअरि एक सुप्रसिद्ध और कुशल नृत्यांगना के रुप में बताई गई है। तथापि, लेखक ने कथा-संयोजन में जिस कल्पना-कौशल का सहारा लिया है, वह इतिहास की प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। वैसे इसमें ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता के कारण काल्पनिक घटनाएँ भी ऐतिहासिक रूप में चित्रित की गई। रचनाकार ने कुछ संवादों के जरिए मानव की अन्तःचेतना को भी झकझोरा है, शहनशाह की मृत्यु के पश्चात प्रजा में फैले शोक को यहाँ बताया है, एक अच्छे बादशाह के चले जाने पर उसकी यादें किस तरह मानव के स्मृति-पटल पर अंकित हो जाती हैं - "विस्मृत ही मानव-सुख का एक मात्र आधार है। यदि स्मृति-पटल पर मानव जीवन की समस्त विगत घटनाएँ अंकित रहतीं तो उसका जीवन नर्क बन जाता, और फिर, उस दशा में उसको जीवन के प्रति इतना अनुराग न रहता जितना आज है। विस्मृति मानव के लिए बहुत बड़ा वरदान है जिसे मनुष्य अपने अञ्चल में छिपाए जीवन के अज्ञात मार्ग पर लक्ष्यहीन पथिक की भाँति अविरल अग्रसर हो रहा है।"[4]

एक और संवाद के जरिए रचनाकार ने बेगम लाल कुँअरि और बादशाह के रिश्ते में

बढती दूरियों को बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से बताया है, जैसे - "यही तो इंसान की नासमझी है जिस चीज़ को अपनी बनाने के लिए इन्सान को जान की बाज़ी लगानी पड़े, वह उसकी कभी नहीं हो सकती, वह कभी न कभी उससे जरुर दूर हो जाएगी। रिश्ता वही मुश्तिकिल होता है जो दोनों ओर से किया जाता है एक ओर से कोशिश किया हुआ रिश्ता जबरदस्ती का होता है, दिल का नहीं।"[5] लेखक ने इस रचना में कई तरह के विचारों को भी पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है। एक स्थान पर मजहब को लेकर भी बेगम और बादशाह के बीच हुई तीखी नोंक-झोंक को रचनाकार ने कुछ इस तरह व्यक्त किया है - "मज़हब बहुरूपिया है, यह हजार शक्लों वाला है, गिर-गिटान की तरह इसने मौका देखते ही रंग बदला है, जब कि शराब हमेशा अपनी असली हालत में रही है। इसने कभी किसी के ऊपर कोई जुल्म नहीं ढाया; कभी किसी को अपनी कोम में मिलने की जबरन कोशिश नहीं की, इसने कभी किसी की नींव पर अपनी दीवाल खड़ी करने की हिमाकत नहीं की।"[6] और इस रचना के अन्त में भारतीय नारी के आत्मविश्वास और पतिव्रता को भी दर्शाया है जैसे - "जिन्दा चेहरे पर मुस्कुराहट तो हर कहीं नज़र आ सकती है, मगर मुर्दा चेहरे पर मुस्कुराहट हिन्दुस्तानी औरत के ही चेहरे पर देखने को मिलेगी।"[7]

इसी तरह 'जहाँदारशाह' उपन्यास ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, तथा इसमें यथार्थ और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य है और साथ ही यह बड़ा सरस और रोचक भी है।

इसी प्रकार 'प्रजाप्रिय - प्रजेश' उपन्यास की भूमिका में ही डॉ. त्रिपाठी ने इस रचना की प्रेरणा-भूमि को स्पष्ट किया है। राजस्थान भारत का वह भूखण्ड है, जो असंख्य प्रजेशों, वीर योद्धाओं एवम् स्वतन्त्रता प्रेमियों को जन्म देकर उनके बलिदानों, अप्रतिम उत्सर्गो एवं अपरिमेय पराक्रमों आदि विशेषताओं के कारण अतीत गौरव प्रेमियों के लिए तीर्थस्थान बना हुआ है। इसी प्रदेश का एक मुख्य आकर्षण है - चित्तौडगढ़ जो कि आज भी उन दिवंगत आत्माओं की स्मृति अपने अंचल में छुपाए हुए अड़िग, अचल तथा ध्वन्साविशेष रुप में मौजूद है। तथापि सम्पूर्ण गढ धूल-धूसरित अवशेष के निरीक्षण से इसके स्वर्णिम अतीत की झॉकी

सहसा साकार हो उठती है।

यह रचना 'प्रजाप्रिय-प्रजेश' चित्तौड़गढ़ के प्रशासक और चूड़ावत के अद्भुत त्याग, मनवांछित सेवाओं और सत्प्रयत्नों, विभिन्न प्रदेशों के बीच पारस्परिक प्रेम और सद्भावना के बीज बोने एवं मानवीय भावनाओं के प्रचार-प्रसार आदि अनेक क्रिया-कलापों पर आधारित है। यह रचना चूड़ावत के सभी प्रयत्नों की एक श्रृंखलाबद्ध ऐतिहासिक गाथा है। अत्याचारी को मार भगाने के लिए जो शक्तिहीनों के द्वारा संगठनात्मक प्रयत्न किए गए उनमें चूड़ावत के प्रयत्न भी शामिल हैं, और इन्हीं प्रयत्नों को लेखक ने इस उपन्यास में श्रृंखलाबद्ध स्वरुप में चित्रित किया है।

इस कृति में वर्णित सभी पात्र और घटनाएँ ऐतिहासिक हैं जैसे - मारवाड़ के राजपुरोहित का ज्येष्ठ राजकुमार चूडावत के लिए टीका लेकर आना, चूड़ावत के पिता के ब्याह की अभिलाषा, राजमाता का राजकुमार मोकल को जन्म देना, दिल्ली के मुहम्मद तुगलक का चित्तौड़ पर आक्रमण, चूड़ावत के शौर्य और पराक्रम से शत्रुओं का भयभीत होना, चाचा और मेरा का मोकल के हाथों वध, रणमल का सिसौदिया सरदारों के प्रति दुर्भावना जगाना और चूड़ावत का राज्य त्याग करना, राजमाता की प्रिय दासी भानमती का बलात्कार होना और अंत में उसे मृत घोषित करना, रणमल के कुकृत्यों का राजमाता के समक्ष खुलकर वर्णन करना, राजमाता को गलती का अहसास होना और राणा कुम्भा की सहायता से चूड़ावत को सादर आमन्त्रित करना और अन्त में चित्तौड में मौजूद शत्रुओं का सफाया करना आदि ऐतिहासिक कथा प्रामाणिक है। परंतु इसका विन्यास लेखक ने अपने ढंग से किया है, जो कि काल्पनिक है, परन्तु ये काल्पनिकता कथा के मूल आत्मा से सर्वथा अनुकूल है, इसलिए यह स्वाभाविक-सी प्रतीत होती है। मुख्य कथा के साथ शान्ति और संगठन के लिए चूडावत का राज्य भ्रमण एक प्रासंगिकता है।

चूडावत इस रचना का प्रमुख पात्र है, जो कि सेवा-भावना से उत्प्रेरित प्राणी है, और

जिसकी कर्त्तव्यपरायणता ही उसके अमर यश का आधार बनती है। पात्रों के परस्पर वार्तालाप और संवादों में आधुनिक वैचारिक चेतना निहित है। कृति में एक स्थान पर महारानी ने दीर्घकालीन सामाजिक जीवनयापन से प्राप्त विचारों को निष्कर्ष रुप में व्यक्त करती हैं । जैसे – "सेवाजनित आनन्द से तृप्त होने वाले हैं ही कितने लोग! आज मानव अधिकार-सुख को ही सच्चा सुख मान बैठा है। प्रत्येक अधिक अधिकारोपभोग की कामना करता है यह नहीं सोचता कि कर्त्तव्यरुपी वृक्ष में ही अधिकाररुपी फल लगते हैं। जब वृक्ष ही नहीं होगा तो फल कहाँ से आयेंगे? चारों ओर अधिकारों की माँग का नारा लगाया जा रहा है। कर्त्तव्यपालन की क्षीण ध्वनि भी कभी कर्ण कुहरों में प्रवेश नहीं करती है। अधिकार सुख में मानव इस सत्य को भूल बैठा है कि कर्त्तव्यपालक अधिकारभोक्ता से महान होता है। संसार में महान् पुरुषों की महानता का रहस्य कर्त्तव्य-पालन रहा है। उन्होंने अधिकारों की कामना कभी स्वप्न में भी नहीं की। अधिकार तो कर्त्तव्य का अनुसरणकर्त्ता मात्र है, कर्त्तव्य वह चुम्बक है जिसकी ओर अधिकार स्वतः आकर्षित होते हैं। यही अधिकारों की मॉग वर्तमान संघर्ष की जननी है। यदि हम चाहते हैं कि मानव-जीवन संघर्षहीन हो, शान्त हो और कल्याणकारी हो तो अधिकारोपभोग की कामना को त्यागना होगा अन्यथा विनाशोन्मुख जन-जीवन की रक्षा असम्भव है..... ये समस्याएँ हमारी और तुम्हारी ही नहीं, प्रत्येक मानव की हैं, ये समस्याएँ देश, जाति, धर्म और काल का भेदभाव नहीं रखतीं । प्रत्येक को गम्भीरतापूर्वक इन पर विचार करना चाहिए, परन्तु मानव स्वत्वशक्तिसम्पन्न होने में इतना व्यस्त है कि इनकी ओर ध्यान देने का उसके पास अवकाश ही नहीं है..... कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की विचारहीनता ने ही उसे जीवन के मूल सत्यों एवं सिद्धांतों से विमुख कर दिया है, इसी उपेक्षा के कारण मानव-जीवन के वास्तविक सुख से वंचित है।" [8]

लेखक ने धर्म के विचारों को भी अपने पात्रों के संवादों द्वारा व्यक्त करवाया है, जिसमें चूडावत सियासी मामलों में धर्म को न घसीटने पर प्रकाश डालता है, जैसे – "हम राजपूत अपने प्रत्येक आचरण के औचित्य को धर्म की कसौटी पर कसते हैं। धर्मानुकूल आचरण ही श्रेष्ठ समझा जाता है, धर्म विरोधी पाप है। राजनैतिक कार्य हो अथवा अन्य, प्रत्येक कार्य की

आधारशिला धर्म है.... सम्भवतः आप धर्म और कत्तव्य को भिन्न-भिन्न वस्तुयें समझते हैं, हम राजपूतों की दृष्टि में दोनों एक हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं। हमारा कर्त्तव्य ही हमारा धर्म है जिसे आप पण्डितों और मुल्ला-मौलवियों की वस्तु समझते हैं वह धर्म का विकृत रुप है। मानव मात्र का धर्म एक है उसके समक्ष सम्पूर्ण मानव जगत एक है, समान हैं। धर्म के आधार पर मानव जाति का विभाजन कुछ स्वार्थान्ध प्राणियों की, धर्म के वास्तविक स्वरुप को न समझ सकने के कारण विकृत व्याख्या का परिणाम है। मानव जाति के विनाशकारी तत्वों का अस्तित्व इसी अज्ञानता के कारण है।" [9]

लेखक ने मानव के आचरण के सत्य को दर्शाते हुए भी इन संवादों के रुप में कहा है - "मानव बड़ा दम्भी प्राणी है वह अपने बराबर किसी को स्वीकार नहीं करता। जो स्वयं करता है उसको श्रेष्ठ मानता है। उसका यही दम्भ उसके नेत्र बन्द किए है, बन्द नेत्रों से मानव उस सत्य के दर्शन कैसे कर सकता है। बड़ा विचित्र है मानव इसका समझना बड़ा कठिन है। "[10]

संवादों में निहित चेतना भी काल्पनिक है। तथापि ऐतिहासिक घटनाओं के संयोजन में इनका यथेष्ट योगदान भी है। अंत में हम यही कह सकते हैं कि यह कृति 'संगठन ही शक्ति है' की भावना से प्रेरित राजपूत जीवन पर आधारित यथार्थ और कल्पना मिश्रित एक ऐतिहासिक उपन्यास है।

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी द्वारा रचित 'दुरभि-संधि' एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। जिसके केन्द्र में है - छत्रसाल ! इन्हीं के जीवन से जुड़ी हुई इतिहास-सम्मत घटनाओं तथा विचारों को लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। छत्रसाल की गणना भारतीय इतिहास के अप्रतिम वीरों, अनुपम साहसी और असाधारण तथा त्यागी इतिहास पुरुषों में की जाती है। छत्रसाल के जीवन काल में भारत लगभग पूर्णरुप से मुगलों के हाथों में था। हर तरफ अशान्ति, अराजकता और अन्याय का बोल-बाला था। इस उपन्यास में जिन घटनाओं के आधार पर छत्रसाल के इतिहास सम्मत स्वरुप को चित्रित किया गया है, वह यथार्थ घटनाओं पर आधारित

है। चम्पतराय का सुजानसिंह द्वारा धोखे से मारा जाना, जयगढ़ का पतन, छत्रसाल का शिवाजी से भेंट, बीजोरी में भाई रत्नशाह से मिलना, गन्धेरी के साथ युद्ध-विधर्मियों के समूल उन्मूलन की प्रतिज्ञा, छत्रसाल का आक्रमण अभियान, मालवा विजय, धमौनी के फौजदार खालिक के साथ युद्ध, छत्रसाल का आहत होना, नरवर के मुगलों के साथ युद्ध, सागर के शासक चन्द्रपाल द्वारा छत्रसाल का स्वागत, छत्रसाल का मुगल सम्राट के दरबार में उपस्थित होना, छत्रसाल और बंगश युद्ध, बंगश खॉ को मार भगाना, छत्रसाल का मस्तानी को बेटी के रुप में स्वीकार करना, बाजीराव पेशवा का मस्तानी से भेंट किया जाना और विदा के पलों में मस्तानी की डोली को कंधा देना आदि घटनाओं के आधार पर लेखक ने इसकी कथावस्तु का निर्माण किया है।

यहाँ पर बताई गई सम्पूर्ण विशेषताओं का इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं के माध्यम से जो अखण्डित कथा का निर्माण किया गया है, उसमें रचनाकार ने पर्याप्त कल्पना-कौशल का प्रयोग किया है।

इन सभी घटनाओं में कल्पना का प्रयोग संयत और संतुलित रुप में ही किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि कल्पना ने ऐतिहासिक को सजाया-संवारा है, कहीं भी विकृत नहीं किया। इस रचना के अधिकतर पात्र इतिहास-सम्मत हैं।कुछ पात्रों की प्रासंगिक कथा काल्पनिक है, जैसे गंगा और मंगलसिंह।

लेखक ने काल्पनिक पात्रों की सृष्टि इतिहास की निर्जीव घटनाओं को सजीवता प्रदान करने के लिए किया है। किन्तु वे इतने घुल-मिल गए हैं, कि सर्वत्र ऐतिहासिक ही प्रतीत होते हैं। कृति में दर्शाया गया पटेल के महल का संपूर्ण विवरण काल्पनिक है, छत्रसाल के जीवन की अलौकिक घटनाओं को तार्किकता प्रदान करने के लिए लेखक ने कल्पना का सहारा लिया है।

घटनाओं, चरित्रों और स्थानों का वर्णनात्मक स्वरुप जहाँ इतिहास-सम्मत तथा यथार्थपरक है, वहीं उसका आन्तरिक स्वरूप कल्पनाजन्य है। इस रचना के दौरान लेखक ने छत्रसाल को एक कुशल राजनीतिज्ञ भी माना है, उसके द्वारा व्यक्त हुए संवादों से इस कथन की सत्यता साबित होती है, जैसे - "जीवन एक समझौता है, प्रत्येक प्राणी को किसी न किसी रुप में समझौता करना पड़ता है। परिस्थितियाँ कभी अपने साथ समझौता करने को बाध्य करती हैं, तो कभी दूसरों के साथ। आप लोग कह सकते हैं, कि वीर प्राणी परिस्थितियों का वशीभूत कभी नहीं होता, परिस्थितियाँ उसकी अनुगामिनी होती हैं, वह परिस्थितियों का स्वामी होता है, उन्हें जन्म देकर परिवर्तित रूप प्रदान करता और अनुकूल बनने के लिए बाध्य करता है; किन्तु क्या कभी इस पर भी विचार किया है, कि परिस्थितियों से टकराने और उनके साथ समझौता न करने में व्यक्ति को कितनी शक्ति का अपव्यय करना पड़ता है। प्रतिरोध में वह शक्ति नष्ट हुए बिना नहीं रहती, जिससे व्यक्ति वर्तमान को ही अपने अनुकूल नहीं बनाता बल्कि भावी पीढ़ी की सुख-समृद्धि के लिए वातावरण भी निर्मित कर जाता है। हमारा विगत इतिहास ऐसे अनेक महापुरुषों के जीवन-कार्यों का साक्षी है, जिन्होंने परिस्थितियों के सामने घुटने तो नहीं टेके किन्तु अपने उत्तराधिकारियों को कष्ट, द्वेष, कटुता, वैमनस्य, उत्पीड़न और विनाश आदि ही उपलब्धियों के रुप में दे गये। स्वयं दृढ़ता के लिए भले ही अविस्मरणीय बन गए हों, किन्तु पराधीनता के जो बीज़ वे बो गए, उन्हीं का परिणाम हमारा वर्तमान जीवन है। आज हम हर दृष्टि से असमर्थ हैं। विदेशियों के कृपाकांक्षी बनने में अपना कल्याण समझते हैं। विधर्मियों की कृपादृष्टि का पात्र बनना सौभाग्य का प्रतीक समझा जाता है। विनाशकों के संकेत पर आचरण करने में भारतवासी गर्व अनुभव करता है, उनका प्रत्येक कार्य, व्यवहार, आचरण तथा विचार तक अनुकरण की वस्तु बनता जा रहा है। क्या यह स्थिति चिन्त्य नहीं है ? क्या ऐसी स्थिति में सम्मानपूर्ण जीवन सम्भव है ? क्या परम्परागत विचारों से अनुप्राणित होना हितकर होगा? क्या वर्तमान अवस्था के सन्दर्भ में, पुनर्विचार आवश्यक नहीं है?"[11]

इसी कोटि के अन्तर्गत और भी कई विचार यहाँ कम दृष्टत्य नहीं हैं - जैसे - "और आज जो विदेशी इतने विशाल साम्राज्य के स्वामी बन बैठे हैं, क्या कभी सोचा है, कि यह किस

बात का परिणाम है? पारस्परिक फूट और मतैक्य के अभाव का, समझौतावादी नीति की शून्यता का। कदाचित् कभी समस्त भारतीय शासक परस्पर विरोधों के साथ समझौता कर सकते कदाचित् एक स्वर हो भारत की जय बोल पाते।"[12]

छत्रसाल के इन विचारों से हमारी वर्तमान दुर्दशा का मूल कारण पारस्परिक वैमनस्य और एकता का अभाव दिखाई पड़ता है। छत्रसाल और रानी दानकुँअर के मध्य के कुछ संवाद, जिसमें एक नारी का राजा को शासन और शासक के विषय में भी समझाना और साथ ही सान्निध्य-सुख का आनन्द भी उठाना निहित है जैसे - "शासक के जीवन का आदि और अंत जय-पराजय होता है शासक को यदि जीवित रहना है तो उसे विजय वरण करना ही होगा और विजय वरण करने के लिए प्रस्थान अपरिहार्य है.... जो स्वरुप नेत्रों में समाया हो, उसे हृदय से नीचे उतरने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारा स्थान मेरे चरण नहीं हृदयस्थल है। चरण-चुम्बन विनय की अपेक्षा हीनता का सूचक अधिक है, वीर प्राणी की हृदयेश्वरी हीन-भावना-ग्रस्त कभी नहीं हो सकती।"[13]

इस तरह हम यह कह सकते हैं कि 'दुरभि-सन्धि' इतिहास सम्मत घटनाओं पर आधारित होकर भी कल्पना शक्ति से सुसज्जित ऐसी रोचक चरित्र-प्रधान रचना है, जिसकी गणना हम प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में कर सकते हैं।

'एक और बेगम' मुगलकालीन इतिहास पर आधारित उपन्यास है, जो अपने वर्ण्य के लिए समूचे रूप से ऐतिह्य तथ्यों का ही मुखापेक्षी रहा है। सलीम और अनारकली के प्रगाढ़ प्रणय-प्रसंग को कथांकित करता हुआ उपन्यासकार एक रुमानी वातावरण की सृष्टि तो अवश्य करता है, किन्तु उसके सोच की परिसीमाएँ इतिहास के सोच का प्रतिक्रमण नहीं कर पाती। हालाँकि डॉ. त्रिपाठीने समूची घटना को एक नाटकीयता देते हुए उपन्यास के केन्द्र में इसे 'फोकस' अवश्य किया है, किन्तु इस प्रसंग में रचनाकार कहीं भी अपने इतर अभीष्ट को व्यक्त नहीं कर पाया है। इस रचना को हम ऐतिहासिक घटना का औपन्यासिक करण भी मान सकते हैं, जिसमें रचनाकार तटस्थ होकर अतीत की घटनाओं से रुबरु होकर सम्पूर्ण नाटकीयता

के साथ अपने औपन्यासिक परिवेश की रचना करता है।

वैसे, कथा-प्रवाह में अन्यान्य सहपात्रों की काल्पनिक सृष्टि भी की गई है, किन्तु बार-बार लेखक सूबेदारों के मनसूबे, किलेदारों और आलाकमानों के आदेश, आक्रमण राजनीति और दरबारी संस्कृति से वह अलग नहीं हो पाता और बार-बार ऐसी घटनाओं का जिक्र करता है - जैसे - "महावत ने हाथी की गरदन पर अंकुश दिया। हाथी की गति तेज हो गई, शेर खाँ और शरीफ खाँ ने भी अपने घोड़े मोड़ लिए हाथी के आगे-आगे घोड़े चल रहे थे। शरीफ खाँ ने बीचमार्ग में दो-चार बार पीछे मुड़कर देखा भी। कुतुब खाँ को हर बार मुस्कराते ही पाया, गतिमान हाथी पर कुतुब खाँ के बैठने की शान किसी बादशाह से कम न थी। बर्दवान की सीमा में पहली बार कुतुब खाँ ने पैर रखा था, बर्दवान की रियाया सड़कों पर उत्सुकतावश आ खड़ी हुई थी। नगर में हाथी का प्रवेश नवीन तो न था, किन्तु दुर्लभ अवश्य था, आक्रमण के दौरान ही यहाँ की जनता ने हाथियों के दर्शन किए थे। शान्तिकाल में हाथी की उपस्थिति असाधारण घटना थी।"[14]

कहीं-कहीं रचनाकार कुतुहल व्यक्त करने के लिए या औपन्यासिक नाटकीयता को बनाए रखने के लिए यत्किंचित काल्पनिक परिवेश की भी प्रस्तुति करता है जैसे - "मार्ग में वहीदा का घोड़ा डोली के साथ-साथ चल रहा था। कुतुब खाँ ने इस बार हाथी को अपनी सवारी के लिए नहीं चुना था। घोड़े पर ही सवार हो वह वहीदा के निकट होने की रह-रहकर चेष्टा कर रहा था। कुतुब खाँ जो भी पूछता वहीदा संक्षेप में उत्तर दे शान्त हो जाती। कुतुब खाँ की दृष्टि में वहीदा का आचरण संदिग्ध हो उठा था, शरीफ खाँ का घोड़ा सबसे आगे था। वहीदा समझती थी कि शरीफ खाँ उससे जितना दूर होगा, कुतुब खाँ उतना निकट आने की चेष्टा करेगा।"[15]

इस प्रकार के दृश्य कथानक को केवल गति देने के लिए सृष्टे गए हैं, किन्तु जहाँ लेखक पात्रों के मध्य संवाद नियोजित करता है, वहाँ उसका रचनाकार इतिहास की बंदिशों में बँधा नहीं रहता - जैसे - "खतरों से खेलने में मुझे मजा आता है, हर खतरा एक-सा नहीं होता।

यह खतरा बहुत मँहगा पड़ेगा, इसका भी एक लुत्फ़ होगा। मुझ पर यकीन है न, इसलिए लुत्फ की बावत सोच रही है वरना, बीच में ही वहीदा ने सतर्क किया, बादशाह सलामत इसी तरफ तशरीफ ला रहे हैं, दोनों दो दिशाओं की ओर मुड़ भागीं।"[16]

इस प्रकार के संवाद कथ्य को रोचक और कथा-प्रवाह को गति देने वाले होते है। किन्तु कथाकार कहीं भी इतिहास के निर्देशों की अवहेलना नहीं करता। कथाक्रम में मध्य वह व्यवधान बनना नहीं चाहता, किन्तु फिर भी वह इस कथा-प्रवाह में अपनी भावात्मक सम्वेदना के साथ जिन्दा अवश्य रहता है। जैसे वह कहता है "औरत -मर्द में इतना ही तो फर्क है, औरत जो छुपाना चाहती है, उसे बड़ी खूबसूरती से छुपा ले जाती है और मर्द जो दिखाना चाहता है, उसे भी खूबसूरत ढंग से दिखा नहीं पाता है और फिर शराबी बादशाह को मुगालते में रखना क्या मुश्किल है, नूरजहाँ जैसा नचाएगी, वैसा ही वह नाचेगा।"[17]

हालाँकि, समूचा परिवेश मुगल सभ्यता और संस्कृति का द्योतक है, जिसके तहत उपन्यास की संवाद-योजना पर भी इस संस्कृति की छाप देखी जा सकती है, किन्तु जहाँ भी कथ्य वर्णनात्मक रुप में प्रस्तुत हुआ है, वहाँ लेखक ने भाषिक दुराग्रह को नहीं माना है।

इस प्रकार 'एक और बेगम' ऐतिह्य तथ्यों पर आधारित होते हुए भी सम्वेदना के स्तर पर सम्प्रेषणीय अवश्य बन गया है।

डॉ. त्रिपाठी द्वारा रचित 'विकलांग' भी एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। भारत देश के राजस्थान भूभाग के सुप्रसिद्ध शासक राणा संग्रामसिंह के जीवन की अप्रत्याशित वक्रताएँ, अदम्य साहस, अद्वितीय शौर्य, अतुलनीय रण-कौशल तथा आश्चर्यजनक दया आदि से प्रेरित क्रिया-कलापों पर आधारित यह औपन्यासिक कृति है। जिसमें राणा संग्रामसिंह के माध्यम से राजपूती जीवन का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। इस कृति के मुख्य केन्द्र में राणा संग्रामसिंह को लिया गया है। लेखक ने इनकी सम्पूर्ण जीवन गाथा को सरसता और रोचकता प्रदान की है।

यह एक औपन्यासिक कृति होने के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों से भी पूर्ण है। इन तथ्यों के संकलन के लिए लेखक ने कई ग्रन्थों का सहारा भी लिया है।

'विकलांग' भारत के मध्यकालीन इतिहास के राजपूती जीवन का यथार्थपरक चित्र है। महाराणा संग्रामसिंह के बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यंत तक की लगभग सभी घटनाओं को इसकी कथा में ग्रहण किया है। राघव के ईडर राज्य में घुसकर राणा रणमल की सेवा में उपस्थित होना; उदयसिंह का विश्वासघात; मांडू के शासक से संघर्ष; राणा रायमल से उदयसिंह की भेंट और उनकी शरण में जाना; राणा का मेवाड़ के सिंहासन पर बैठना; पृथ्वीराज, जयमल और सांगा तीनों राजकुमारों का पालन-पोषण; राजकुमारों के मध्य पनपती ईर्ष्या-द्वेष की भावना; सांगा का वन-निवास; तारा का चिंतित होना; सांगा का उदर-पोषण हेतु गइरिए के यहाँ सेवारत होना; तारा का पृथ्वीराज के साथ ब्याह होना; अजमेर नरेश की सेवा में सांगा की नियुक्ति, आभूराय द्वारा पृथ्वीराज को विष देना, सांगा का कर्मचन्द की पुत्री गंगा के साथ प्रेम-परिणय, पृथ्वीराज की मृत्यु तारा का सती होना, राणा संग्रामसिंह का मेवाड़ के गद्दी पर सिंहासनारूढ़ होना, मुस्लिम शासकों के विरुद्ध राणा की युद्ध की तैयारी करना, सिकन्दर लोदी और इब्राहिम लोदी का राजपूतों के हाथों पुनः पराजित होना, बाबर और राणा का ऐतिहासिक युद्ध, राणा संग्रामसिंह की पराजय और मृत्यु क्रमशः चित्रित है।

उपर्युक्त, इन ऐतिहासिक घटनाओं का विन्यस्तीकरण सर्वथा काल्पनिक है। इस कृति में घटित घटनाएँ और अंतिम परिणति तो ऐतिहासिक है, किन्तु उनकी मूल्य उद्भावनाएँ और स्वस्थ विन्यास विशुद्ध काल्पनिक है। वैसे तो लेखक ने राणा साँगा के जीवन की प्रत्येक गतिविधियों को यहाँ चित्रित किया है, परन्तु भ्रातृस्नेह का साथ-साथ उनमें सिंहासन-प्राप्ति हेतु बढते ईर्ष्या-द्वेष को भी प्रस्तुत किया है, जिनमें तीनों राजकुमार आपस में युद्ध करते हैं और सारंगदेव उन्हें समझाते हैं जैसे - "यह क्या नादानी कर रहे हो! तुम एक ही पिता की सन्तान हो, एक-दूसरे की हत्या करने पर क्यों तुले हुए हो? ये तलवारें भाई-भाई के लिए नहीं हैं। इनसे तो शत्रुओं के सिर काटने चाहिए। भ्रातृ-स्नेह को क्यों कलंकित कर रहे हो? जरा

सोचो, विवेक से काम लो। राम-लक्ष्मण का पारस्परिक भ्रातृ-स्नेह स्मरण करो। भरत का त्याग मत विस्मरण करो। तुम लोग उसी देश की संतान हो। मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता तुम्हें पुकार रही है। देश शत्रुओं से अरक्षित है, उसकी रक्षा करो।"[18]

लेखक ने संवादों के माध्यम से व्यक्ति केन्द्रित और राष्ट्र - केन्द्रित धर्म के स्वरुप के दर्शन भी करवाए हैं, एक स्थान पर राणा साँगा और आमेर नरेश द्वारा एक समस्या पर विचार-विमर्श करते हुए देख सकते हैं जैसे - " दुख में सुख नहीं, वरन् दुख ही सुख है। वही व्यक्ति वास्तविक रुप से सुखी है जो दुख को दुख मानता ही नहीं। काली घटाओं के मध्य जो विद्युत का महत्व होता है, वही दुखपूर्ण जीवन में सुख का है, सुख तो विद्युत की भाँति क्षणिक है। इस क्षणिक दुख को सुख मानना और चिरस्थायी वस्तु को दुख मानना जीवन के वास्तविक आनन्द से वंचित रहना है। प्रजा आपको अत्यन्त सुखी समझती है, परन्तु क्या आप अपने को इतना सुखी समझते हैं?"[19]

अर्थाभाव के कारण राणा सांगा को एक गड़रिए के यहाँ मात्र पेट भरने के लिए नौकरी करनी पड़ती है, और भोजन भी पकाना पडता है, खाना ठीक से न बन पाने के कारण अपशब्द भी सुनने पडते हैं - जैसे- "चलो, निकलो बाहर चौके से। अब मैं तेरी कटार से नहीं डरने की। रोटी बनाएगा तो बगल में कटार, बरतन माँजेगा तो कटार। जब देखो तब कटार कमर में लटक रही है। बहुत डर चुकी। कच्ची-पक्की रोटियाँ खिलाकर मार डालना चाहता है हम लोगों को?"[20]

उपन्यासकार एक आधुनिक प्राणी है, और इस रचना में रचित सम्पूर्ण घटनाएँ सोलहवीं शताब्दी की, इस लम्बे अंतराल को भरने का एक मात्र साधन कल्पना है, जिसका प्रयोग रचनाकार ने दिल खोल कर किया है। राणा संग्रामसिंह के ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर काल्पनिकता को सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यह उपन्यास ऐतिहासिक चेतना सम्पन्न होने के साथ-साथ युग-विशेष को भी सजीव

रुप में प्रस्तुत करता है।

'विकलांग' एक चरित्र-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें चरित्र का बहिर्पक्ष इतिहास सम्मत है और उसकी आन्तरिकता कल्पनाप्रधान और मनोवैज्ञानिक है। चरित्र विशेष की यथार्थ और कल्पना की सहायता से जो सजीवता, रोचकता और सरलता प्रदान की गई है, यहाँ अनुपम है।

इसी प्रकार 'महाराज' भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है, और इस इतिहास के केन्द्रिय चरित्र हैं - 'महाराज हर्ष'। हर्ष का जो इतिहास प्रसिद्ध रुप है, वह तो सर्वविदित है, किन्तु महाराज हर्ष की दृष्टि में स्वयं हर्ष क्या है, यह 'महाराज' का वर्ण्य-विषय है। इस रचना में महाराज हर्ष अपनी आपबीती स्वयं सुनाते हैं। अपनी छोटी बहन राज्यश्री की प्रसन्नता का भार भी वहन करते हुए दिखाए गए हैं, जिसमें निश्चल हर्ष के प्रति प्रेम का वर्णन भी लेखक ने बड़े आकर्षक रुप में चित्रित किया है, जैसे - "भार और प्रसन्नता, कितनी परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं। एक है कष्टकारक और दूसरी है प्रिय। कष्टकारक स्थिति प्रिय कैसे हो सकती है, किन्तु अपनी प्रिय बहिन की रक्षा का भार किस भाई को अप्रिय लगेगा। यदि भाई-बहिन के बीच स्वाभाविक स्नेह-सम्बन्ध सुरक्षित है तो रक्षाभार प्रिय लगेगा ही। यह है मानवीय मनःस्थिति की विचित्रता। अपनी इसी विचित्रता के कारण ही मानव सृष्टि में सर्वोत्तम जीव है।"[21]

'महाराज' के 'कथा-सूत्र' में ही लेखक ने कई विचारों को स्पष्टता प्रदान किया है जैसे - "परिस्थितिवश हो या संयोगवश, जीवन में कुछ-न-कुछ ऐसा अवश्य घटित होता है जो स्मृति के रुप में संरक्षित रहता है, स्मृतियों का यही संरक्षण मन को मन से जोड़ता है। यह जोड़ जब श्रृंखला का रुप धारण कर लेता है तब इतिहास की सृष्टि होती है, इस इतिहास के प्रति मानव-मन में सहज आकर्षण होता है। यह आकर्षण जब मन को स्पर्श कर उठता है तब मानव को अतीत वर्तमान की अपेक्षा अधिक मोहक लगने लगता है और यह मोहकता जब सघनतर हो उठती है, तब अतीत वर्तमान रुप में जीवन्त हो उठता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे

वह उसका प्रत्यक्षदर्शी हो। प्रत्यक्षदर्शी ही नहीं, कभी-कभी तो उसमें अभिन्नता की अनुभूति भी होने लगती है, कुछ ऐसी ही अनुभूति का प्रतिफल है यह 'महाराज'।"[22]

आगे, डॉ. त्रिपाठी ने इस औपन्यासिक कृति के सन्दर्भ में राजनैतिक पक्ष को भी उद्घाटित करते हुए लिखा है - " इतिहास निर्वैयक्तिक होता है और उपन्यास वैयक्तिक। बाह्यादृष्टि से दोनों पृथक प्रतीत होते हैं, किन्तु वस्तुतः एक-दूसरे के अनुपूरक; और अनुपूरक ही क्यों, दोनों एक ही सत्य के दो रुप हैं, रुप में आकर्षण होता है यही रुप जब स्वरुप हो जाता है तब अपने मन की बात बन जाती है और अपनी बात किसे प्रिय नहीं होती। जो अपने लिए प्रिय है वह दूसरों को भी प्रिय लगे - यही भावमूलक प्रयास ही तो साहित्य-सृष्टि का आधार है, यही आधार जब कथात्मक सरसता को रुपायित करता है तब उपन्यास की संज्ञा धारण करता है। वस्तुतः उपन्यास निर्वैयक्तिक अनुभूति का ऐसा वैयक्तिक प्रयास है जो रचनाधर्मिता को सरसता ही प्रदान नहीं करता है, बल्कि सम्प्रेरक शक्ति से उसे समन्वित भी बनाता है। 'महाराज' ऐसी ही सरस और सम्प्रेरक शक्ति से समन्वित एक कथात्मक प्रयास है जो आत्मकथन शैली में अभिव्यक्त है।"[23]

सम्राट हर्ष अविवाहित जीवन जीता है, परन्तु ऐश्वर्य सुख से वंचित नहीं रहता। लेखक ने भोग और त्याग की मनःस्थितियों का चित्रण इस रचना में तलस्पर्शी रुप में किया है। वैसे, हर्ष के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण भी कम नहीं हुआ है। मानव जीवन-सत्य का भी कम सशक्त चित्रांकन लेखक ने नहीं किया है। 'महाराज' में लेखक ने इस सत्य को अत्यन्त सशक्त और सजीव रुप में चित्रित किया है कि त्याग ही भोग का सुखद परिणाम है और त्याग ही मानव को अविस्मरणीय बनाता है।

व्यक्ति चाहे सम्राट हो, चाहे शासक हो या सैनिक मूलतः होता एक सामाजिक प्राणी ही है। आकांक्षाओं और साधनों के संयोग से जो उपलब्धियाँ जीवनकाल में सम्भव होती हैं, उनकी समृद्धि और संरक्षण के लिए वह आजीवन कार्यरत रहता है, जिसमें कर्म की प्रधानता कर्ता से अधिक होती है, जैसे - "यह विश्व कर्म प्रधान है। कर्म की महत्ता सर्वोपरि है कर्ता के रुप में

व्यक्ति का मूल्यांकन उसके कर्मों के आधार पर होता है, प्रिय व्यक्ति नहीं, उसके कर्म होते हैं। कर्म ही व्यक्ति को जन्म देते हैं, जीवित रखते हैं और मारते भी हैं। मानव कर्मकेन्द्रित प्राणी है। कर्म ही अन्य प्राणियों से पृथक उसके अस्तित्व की घोषणा करते हैं, जो कर्म व्यक्ति के अस्तित्व के आधार हैं, उन्हें कभी भी विस्मृत नहीं करना चाहिए। किसी के जीवन की कैसी भी अवस्था हो, कर्म की सत्ता की उपेक्षा मत करो। कर्म ने ही अवस्था विशेष उत्पन्न की है और कर्म ही उससे मुक्त कराएंगे..... कर्मो की श्रृंखला अनन्त है, व्यक्ति आते हैं, जाते हैं, किन्तु कर्म की निरन्तरता कभी भंग नहीं होती। कर्म को भ्रमवश मानव फल की सीमा समझ बैठता है किन्तु कर्म तो वह आधारभूमि है जिस पर क्रिया के पौधे उगते हैं।"[24]

सर्वस्वादन में जो सुख और आत्मिक शांति होती है, वह संघर्ष के द्वारा प्राप्त नहीं होती। हर्ष ने अपने आचरण द्वारा यह सिद्ध किया है कि सुख भोग में नहीं बल्कि त्याग में है। भोग के सुख से त्याग का आनंद श्रेष्ठ होता है, जैसे - " अधिकार-सम्पन्नता सेवा महत्ता से प्रादुर्भूत होती है और सेवा का आधार होता है त्याग। सदा स्मरण रखो त्यागी ही अधिकारी होता है। इस सत्यानुभूति की उपस्थिति में अधिकार सुख की मादकता पनपने नहीं पाती और जो इस मनः-स्थिति से मुक्त होता है, वही सच्चा अधिकारी कहलाने के योग्य होता है सच्चे अधिकारी बनने की चेष्टा कीजिए।"[25]

जीवन में ऐसे अवसर आए बिना नहीं रहते जब आत्मकेन्द्रित हो मानव आत्मविश्लेषण नहीं करता। यह आत्मविश्लेषण अर्जन की अपेक्षा उत्सर्ग पर बल देता है। सम्राट हर्ष भी आत्मविश्लेषण करते हैं और अपनी उपलब्धियों की चर्चा करते हुए सर्वस्व त्याग भावना पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं - "मानव का लक्ष्य है शान्ति। आजीवन जो कुछ भी मानव करता है, सब शांति-प्राप्ति के लिए करता है। अशांति के जितने रुप या कारण सम्भव है, युद्ध के भी उतने ही रुपों का अस्तित्व अपरिहार्य है, मानव मूलतः है शान्तिमय प्राणी, किन्तु मानव की कुछ नैसर्गिक आवश्यकताएँ होती हैं। आवश्यकताओं का अस्तित्व अशान्ति की अनुभूति के लिए पर्याप्त होता है अपनी इस अशान्ति को अनस्तित्व रुप प्रदान करने के लिए तो मानव

क्रियाशील हो उठता है। उसकी यही क्रियात्मकता जो मुख्यतया होती तो शान्ति की स्थापना के लिए, विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष या युद्ध का रुप धारण कर लेती है। मेरे विचार से तो मानवजीवन युद्ध का प्रतीक न होकर शान्ति का एक ऐसा उपादान है, जो मूल लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है।"[26]

यह रचना 'महाराज' सम्राट हर्ष के मन के प्रत्येक भाव, विचार और उससे सम्प्रेरित हर गतिविधी उदात्त और उत्सर्गभाव से अनुप्रेरित है। लेखक ने कुछ स्थानों पर कर्तव्यमूलक धार्मिकता का भी परिचय दिया। इस रचना के अन्त में स्वयं हर्ष के सम्वादों द्वारा इस बात का परिचय हमें मिलता है, जैसे - "धार्मिक सम्मेलन सकुशल सम्पन्न तो हो गया किन्तु जो सूचना मिली उसके अनुसार विभिन्न धर्मो विशेष रुप से - वैदिक धर्मावलम्बियों और बौद्धधर्म के अनुयाइयों के मध्य सद्भाव के स्थान पर कटुता ही उत्पन्न हुई थी। कटुता ने वैमनस्य का ऐसा रुप धारण कर लिया था कि समय-समय पर यदि कड़ी से कड़ी सुरक्षा व्यवस्था न की गई होती तो धर्म सद्भाव-स्थल धर्मान्ध व्यक्तियों का रणस्थल बन गया होता।"[27]

'महाराज' वस्तुतः एक ऐसी ऐतिहासिक रचना है, जिसमें वर्तमान समाज की ऊहापोहात्मक और संघर्षमयी परिस्थितियों का चित्रांकन किया है, और जिन्हें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं पर सैनिकों के वार्तालाप कथा-विस्तार के लिए प्रयोग में लाए गए हैं।

इतिहास में वर्णित हर्ष का स्वरुप औपन्यासिक कथा के सर्वथा उपयुक्त नहीं है। किन्तु यहाँ पर हर्ष का जो रुप है, वह कथात्मक सरसता के लिए पर्याप्त समीचीन है। लेखक ने हर्ष के जीवन की अव्यक्त और अज्ञात बातों की चर्चा इस रचना में किया है जो कि इतिहास सम्मत प्रतीत नहीं होती। इस रचना में चित्रित धार्मिक चेतना से यह बात खुलकर सामने आती है कि यह धार्मिक सम्मेलन से सद्भावना कम उत्पन्न होती है और वैमनस्यता का प्रचार अधिक होता है। लेखक ने इस प्रस्तुतीकरण को सर्वथा विश्वसनीय बनाने के लिए महाराज हर्ष को प्रथम

पुरुष के रुप में चित्रित किया है।

'सम्राट अशोक' भारत के मौर्यकालीन इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है। भारतीय इतिहास में मौर्यकाल को सर्वप्रथम सत्ता की दृष्टि से सम्पन्न युग होने का गौरव प्राप्त है। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखें तो मौर्यकाल ही एकमात्र ऐसा युग माना गया है, जिसमें भारतीय इतिहास की तत्कालीन और विश्वसनीय झाँकी हमें प्राप्त होती है।

डॉ. त्रिपाठी द्वारा रचित इस रचना के केन्द्रिय चरित्र हैं - 'सम्राट अशोक'। इस रचना में लेखक ने तद्युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में वर्तमानकालीन स्थितियों का चित्रण किया है। भारतीय इतिहास के अनुसार लेखक ने सम्राट अशोक को प्रारम्भ काल में क्रूर और हिंसक रुप में चित्रित किया है, जबकि जीवन के उत्तरार्ध में बौद्धधर्म को अपनाकर अहिंसक के रुप में।

सम्राट बिन्दुसार के खंडचित्र को ऋषभदेव के साथ चित्रित किया है। चाणक्य की भूमिका को पूरी रचना में एक प्रमुख स्थान दिया गया है। राजकुमार सुसीम और अशोक के प्रारम्भिक विवाद से कथासूत्र को आगे बढाया गया है। नायक सम्राट अशोक के माध्यम से वैयक्तिक संघर्ष के साथ-साथ पारिवारिक कलह को भी सजीव रुप दिया गया है। आचार्य चाणक्य और राधागुप्त के वार्तालाप द्वारा वर्तमान राजनीति पर भी प्रकाश डाला गया है - जैसे - "समय बड़ा बलवान होता है, राजन! भूतमात्र काल के हाथ का खिलौना है, जो होना है, वही हो रहा है, जो हो रहा है, वही ठीक है, उसे ही उचित समझकर स्वीकार करो। किसी प्रकार की आशंका को कभी जन्म मत दो। विश्वास रखो, जब तक मैं जीवित हूँ, मौर्य-साम्राज्य पर आँच भी न आने पाएगी।"[28]

लेखक ने सम्राट बिन्दुसार के शान्तिमय जीवन की तत्कालीन विषमता की प्रतिक्रिया को भी वर्णित किया है - जैसे - "ठीक कहते हैं आप! मानव अपनी जिन शक्तियों पर विश्वास

करता है, उनके निष्फल सिद्ध होने पर ही वह दयानिधि का स्मरण करता है। आज तक मैं अपने को सर्वसमर्थ समझता रहा हूँ, इसकी कल्पना तक न की थी कि ऐसा भी कोई रोग हो सकता है जिसके उपचार की क्षमता हमारे औषधि विज्ञान में नहीं है। मानव कितना क्षुद्र प्राणी है अपने ही विश्वासों के हाथों उसे पराजय स्वीकार करनी पड़ती है आज मगध सम्राट कितना असमर्थ है, कितनी दयनीय स्थिति है।"[29]

सत्ता-प्राप्ति के लिए भ्रातृद्रोह भी कम द्रष्टव्य नहीं है जैसे - "अशोक! कर्ण्य-अकर्ण्य का विवेक मुझमें है, एक साधारण सेवक का पक्ष लेकर मुझसे विवाद करना तुम्हें शोभा नहीं देता.... मैं कुमार नहीं युवराज हूँ, महामात्य। अपनी भविष्यवाणी से अपने शिष्य कुमार को ही संत्रस्त कीजिए मुझे नहीं। मैं वाक्प्रहार में नहीं, शस्त्र-संघर्ष में विश्वास करता हूँ अपने शिष्य को आज्ञा दीजिए न, उठाए खड्ग। हो जाए परीक्षा।"[30] बड़े भाई सुसीम का अशोक से मन-मुटाव कम महत्वपूर्ण नहीं है।

सैलवाल और कीर्तिदेव जैसे पात्रों के माध्यम से राजमहल की विलासपूर्ण जीवन झाँकी प्रस्तुत की गई है - जैसे - "यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो? अभी तक एक भी सुन्दरी नहीं आ सकी। जाओ, तत्काल लाओ। बिना सुन्दरी के लौटना मत।"[31] जहाँ आचार्य चाणक्य अशोक के पक्षधर है, वहीं अमात्य खल्लाटक सुसीम के पक्षधर बताए गए हैं। इस रचना में घटित सभी घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं। ९९ भाइयों की समाप्ति को राजप्रासाद में अग्निकाण्ड के द्वारा चित्रित किया गया है, जो इस कथा में विशेष महत्व भी रखता है।

डॉ. त्रिपाठी ने मानव के अन्वेषणों और अनुसंधानों के बल पर पशु, पक्षियों, पौधों और जलचरों आदि तक को इस रचना में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने की चेष्टा की है। भाइयों को संघर्ष में पराजित कर राजगद्दी प्राप्त करना, जनहित में दिनरात एक कर देना, राजपरिवार की सुख-समृद्धि के लिए सम्भव उपादान एकत्र करना, सुविशाल साम्राज्य की स्थापना करना, कलिंग के हृदय-विदारक नर-संहार से विचलित हो बौद्ध धर्मावलम्बी बनना

आदि ऐसी ही इतिहास सम्मत घटनाएँ हैं, जो सामाजिक ही नहीं अपितु राजनीतिक चेतना पर भी अधिक प्रकाश डालती हैं। वीर रस से भरे हुए संवादों को लेखक ने यहाँ कूट-कूट कर भरा है। सैनिकों के मध्य परस्पर हो रहे वार्तालाप, कलिंग युद्ध के दौरान का भयावह वातावरण, जान की बाज़ी लगा देने वाले सशस्त्र सैनिक, घुड़सवार सैनिक आदि के चित्र भी लेखक ने अंकित किये हैं। पात्रों के स्वगत कथन अधिक लम्बे होने के बावजूद पाठक के मन में नीरसता भी आ जाती है।

वैसे, इस रचना में लेखक ने ऐसे विघटित और विश्रृंखलित समाज के जीवन को भी प्रस्तुत किया है, जिसे सम्राट अशोक अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा और राजनीतिक शक्ति के द्वारा सम्पुष्ट रुप देते हुए दिखाए गए हैं।

लेखक ने अशोक की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने के लिए अनेक प्रासंगिक कथाओं का संयोजन भी किया है। नारी पात्रों की बहुत अधिक भरमार है - शैला और पद्मा एक कुशल नर्तकी के रुप में चित्रित की गई हैं, जबकि वीरवती नामक स्त्री के शौर्य और पराक्रम को भी लेखक ने इस रचना में चित्रित किया है। अस्त्र-शस्त्र धारण करते हुए सैनिकों के मध्य वार्तालाप को भी लेखक ने यहाँ चित्रित किया है - जैसे- "आज तो बन्धु जँच रहे हो। यह वेशभूषा तुम पर खिलती भी खूब है। शरीर भी तो हृष्ट-पुष्ट है। क्या बाँकी चितवन है। क्या पौरुष की प्रतीक मूँछे हैं। लम्बाई-चौड़ाई की समानता करने वाला तो कोई है ही नहीं।"[32]

इस प्रकार 'सम्राट-अशोक' में आधुनिक युग की चेतना को डॉ. त्रिपाठी ने मौर्य-युग में इस रुप में चित्रित किया है कि वह मौर्यकालीन होते हुए भी आधुनिक-सी प्रतीत होती है।

'सत्ता और संघर्ष' उत्तर मुगलकालीन सम्राट निर्माताओं, सैय्यद बन्धुओं के स्वाभाविक किन्तु असाधारण क्रियाकलापों पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें सत्रहवीं शताब्दी

के मध्यकाल की राजनीति-प्रधान जीवन का चित्रण डॉ. त्रिपाठी ने किया है। औरंगज़ेब के शासनकाल के पश्चात् मुगलकाल का पतन होना प्रारम्भ हो गया। बहादुरशाह के पुत्र जहाँदारशाह का गद्दी पर बैठना और सैय्यद बन्धुओं का फर्रुखसियर की सहायता से उसकी हत्या करवा देना जिससे मुगलकाल के ह्रास का प्रारम्भ होना निश्चित हो गया। सैय्यद बन्धुओं के शासनकाल में जो भी सम्राट के रुप में सिंहासन पर बैठा वह उनके हाथों की कठपुतली ही बनकर रहा। सैय्यद-बन्धु अपनी मर्जी के बादशाह थे, उनकी गर्वोक्ति प्रसिद्ध थी -जैसे- "जिसके सिर पर जूता रख दूँ, वही बादशाह बन जाय। दोनों परस्पर विरोधी गुणों के भंडार थे, किन्तु एक-दूसरे के पूरक बनकर उन्होंने फर्रुखसियर, रफी उद्दजीत, रफीउद्दोला, इब्राहीम और रोशन अख्तर को जो इतिहास में 'मुहम्मदशाह' के नाम से प्रसिद्ध है, मुगल सम्राटों के रुप में बनाया-बिगाड़ा। दोनों भाई जब तक दो शरीर एक प्राण रहे तब तक मुगल-शक्ति उनके हाथों का खिलौना रही, किन्तु जैसे ही दोनों सत्ता के लिए परस्पर संघर्षरत हुए वैसे ही उनका पतन प्रारम्भ हो गया और विरोधियों के षडयन्त्रों के शिकार बन गए।"[33]

इन्हीं दोनों के क्रियाकलापों की कहानी इस 'सत्ता और संघर्ष' में रचित है, इन्हें सम्राट-निर्माता भी कहा जाता था। इस काल के सम्राट बड़े ही विलासी, शक्तिहीन और अकर्मण्य थे।

'सत्ता और संघर्ष' ऐतिहासिक उपन्यास होने के बावजूद भी लेखक ने इसमें राजनीति से सम्बन्धित घटनाओं को विशेष महत्व दिया है। इन सभी राजनीतिक गतिविधियों के मूल में मानव होता है, जहाँ राजनीति होती है, वहाँ विलासिता अवश्य रहती है। सैय्यद-बन्धुओं के समय विलासिता अधिक प्रबल थी, लेखक ने इस रचना के माध्यम से एक विलासप्रिय समाज का चित्र अंकित किया है। जैसे - "अब्दुल्ला खाँ के विलास कक्ष में पैर रखते ही लक्ष्मी ने देखा कि एक ओर विभिन्न वाद्ययंत्रों के वादक सुमधुर संगीत छेड रहे हैं, दूसरी और खाँ साहब अनेक नव मुकुलित कलियों से घिरे हैं। एक कोमल कर में मदिरा पूरित पात्र है जो खाँ साहब के अधरों का स्पर्श करनेवाला है।"[34]

सत्ता के पीछे संघर्ष का अस्तित्व ही इस रचना का कथात्मक प्राणतत्व है। इस रचना के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि लेखक ने उन चरित्रों को चित्रित किया है, जो सत्ता-प्राप्ति हेतु संघर्ष करते हैं। संघर्ष से पहले जो अपने लगते हैं, वही संघर्ष के बाद पराए हो जाते हैं। 'सत्ता और संघर्ष' में डॉ. त्रिपाठी ने परम्परागत छल-कपट, रक्तपात, अविश्वासजन्य विद्रोह और मोहजन्य विनाश को ऐसे रुप में चित्रित किया है, जो धर्म का एक रुप-सा प्रतीत होता है।

वास्तव में यह रचना सैय्यद-बन्धुओं के उत्थान और पतन की कथा है, इसमें घटित सभी घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं, यहाँ तक की आमोद-प्रमोद तथा विलासिता आदि से सम्बन्धित घटनाएँ भी इतिहास-सम्मत हैं। एक लक्ष्मी नामक पात्र और उससे जुड़ी घटनाएँ काल्पनिक हैं, जिसमें कथानक को एक व्यवस्था प्रदान किया है। इसमें लक्ष्मी उस युग की नारी पीड़ा का प्रतीक है।

जहाँदारशाह की हत्या, फर्रुखसियर का गद्दी पर बैठना, बेगम साहबानों का आत्महत्या करना तथा विभिन्न मुगल शाहजादों का सिंहासनारुढ़ होना तथा अपदस्थ होना और सैय्यद-बन्धुओं का युद्ध-स्थल में समाप्त होना आदि ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ हैं, जिन्हें एक मात्र काल्पनिक पात्र लक्ष्मी के आचरण गाथा द्वारा संग्रथित किया गया है। लक्ष्मी द्वारा लेखक ने बेबस में बंदीशाही हरमों की शोभा मात्र अनेक नारियों की पीड़ा का प्रतिशोध व्यक्त किया है।

'सत्ता और संघर्ष' में डॉ. त्रिपाठी ने तत्कालीन शासकों को प्रामाणिक तथा निर्बाध विलासिता के सन्दर्भ में नारी अपमान की प्रतिशोध ज्वाला का उदय, शमन की काल्पनिक शक्ति तथा कला-कौशल का उल्लेख किया है। सेठ रतनचन्द्र की कोठी का सविस्तार वर्णन व्यंग्य कथा के माध्यम से परोक्ष रुप में आधुनिक पूंजीपतियों के मनोवृति का घृणास्पद रुप में वर्णन किया है, जो काल्पनिक होते हुए भी समसामयिक मानवीय अमानुषिक दुष्प्रवृत्तियों का सम्प्रेरक सा जान पड़ता है। यह उत्तरकालीन मुगल घटनाएँ विगतकालीन होने के कारण स्पन्दनहीन और निष्प्राण-सी जान पड़ती हैं। लेखक ने ऐसी घटनाओं में प्राण-प्रतिष्ठा के लिए

जिस कल्पनाशक्ति का सहारा लिया है, वह इतिहास सम्मत होते हुए भी चेतना-सम्पन्न मानी गई हैं।

अन्त में, डॉ. त्रिपाठी द्वारा रचित 'सत्ता और संघर्ष' एक विशुद्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित ऐसा इतिहास-प्रधान उपन्यास है, जिसे लेखक ने अपने कला-कौशल और कल्पना के सानुपातिक प्रयोग द्वारा मनोरम रुप प्रदान किया है।

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों के इस समग्र अनुशीलन से हमारी धारणा निहित होती है कि कथाकार का मंतव्य ऐतिह्य तथ्यों की यथानुरुप प्रस्तुति मात्र ही नहीं रही है, अथवा कहा जा सकता है कि कथाकार इतिहास के किन्हीं विशेष घटनाचक्रों को कथांकित करने के लिए व्यग्र नहीं रहा है, वरन् इन ऐतिह्य घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में वह समग्र पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश को भी स्पर्श करने के लिए आतुर रहा है। ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से वह सामाजिक सरोकार से जुड़े उन तमाम तथ्यों को उभारने के लिए प्रयत्नशील रहा है, जो परिवार और समाज के धुरी रहे हैं। सामाजिक परिवर्तित मूल्यों के तहत जो एक जनचेतना अथवा एक जन-आक्रोश समग्र रुप से व्यक्त हुआ है, उसे और प्रखरतर करने के लिए कथाकार ने ऐतिहासिक घटनाओं अथवा इतिहास प्रसिद्ध पात्रों का अवलम्बन ग्रहण किया है।

बात चाहे महाराणाओं की हठधर्मिता अथवा पूर्वज प्रदत्त गौरव की रही हो, अथवा मुगल बादशाहों के आक्रामक लड़ाकू तेवरों की रही हो, इन समस्त आक्रोशों और आक्रमणों के तहत जिस प्रकार जन-जीवन भयातुर और भीरु रहा है उस समग्र मानसिकता को कथाकार ने परोक्ष रुप से सम्प्रेपित करने का यत्न किया है।

सम्वेदना और सम्प्रेषण उपन्यास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभावक पूंजी रही है। सम्प्रेषण के लिए कथाकार इतिहास के जीर्ण दरवाजों को खटखटाता हुआ पाठक की अन्तर्चेतना

पर एक प्रसिद्ध उपाख्यान को अभिमंडित करता है, तो दूसरी ओर पात्रों के संवेद्य आवेगों को लेकर वह अंतर्मन की व्यथाओं, पीड़ाओं, हर्षोल्लास और खुशियों को भी व्यक्त करता है। आधुनिक व्यवस्था और अतीत के साम्राज्यों की आरोपित राजनीति के तहत कथाकार इस अन्तराल में हुए परिवर्तन और बदलाव की स्थितियों का अध्ययन करने के लिए पाठक को स्वतंत्र छोड़ देता है। जहाँ एक ओर वह इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु के आधार पर मुगल साम्राज्य के क्रूर निर्णयों, आक्रामक तेवरों, दुराग्रही धार्मिक जूनुनों और कट्टर कोमवादिता के ज़हर को व्यक्त करता है। वहीं दूसरी और मुगल सम्राटों के द्वारा स्थापित एक उदारवादी चेतना की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है, जहाँ दरबारी संस्कृति के तहत निरपेक्ष भाव से सभी वर्ण के कलाकारों का सम्मान किया जाता था। सभी को पारितोषिक देकर संतुष्ट किया जाता था। दरबार से जुडे सामन्तों, सेठ-साहुकारों, राज्याधिकारियों एवं दरबार में सम्मानित कलाकारों में वर्णभेद नहीं किया जाता था। कलाकारों, पंडितों, विद्वानों का आदर सर्वत्र होता था। इन्हीं क्रूर और आक्रामक बादशाहों के द्वारा ही एक ऐसी अभिजात संस्कृति को भी स्थापित किया गया जहाँ शालीन व्यवहार, अदब, कायदा, शिष्टता, सभ्यता आदि का परिचलन बड़े कड़े नियमों के तहत होता था। वैसे तो बादशाहों के लिए भी एक निश्चित आचार-संहिता होती थी, जिसके तहत उसके मज़हबी क्रियाकलापों के लिए मौलवियों एवम् विद्वान पंडितों की व्यवस्था रहती थी, जो अनिवार्यतः राजकीय कार्यो के लिए तय की गई थी।

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी ने अपनी प्रत्येक रचना में मानवतावादी स्वर को मुखरित किया है। उन्होंने इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं और चरित्रों के अलावा काल्पनिक पात्रों और घटनाओं को सजीवता प्रदान की, वे इतिहास जीवन्त रुप में प्रस्तुत करने में पर्याप्त सजग दिखाई देते हैं। इतिहास से परे घटनाओं और पात्रों का जो जीवन्त-चित्रण इन रचनाओं में मिलता है, उनसे ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों को सप्राणता प्राप्त होती है। रचनाकार के साथ-साथ पाठकगण भी इन घटनाओं और चरित्रों के साथ विचरण करता है।

डॉ. त्रिपाठी ने रोचकता को अपनी रचना-शैली का मुख्य आधार माना है। उनके अनुसार रोचकता रचना का प्राणतत्व होती है और इस तत्व विशेष को लेखक ने अपनी रचना

में यथेष्ट स्थान दिया है। वर्तमान सामाजिक बुराइयों को लेखक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखता ही नहीं, अपितु उसका उन्मूलन भी ऐतिहासिक घटनाओं के साथ वर्णित करता हुआ दिखाई देता है। वर्तमान भारत के पिछडेपन का कारण वह अतीतकालीन शासकों की अकर्मण्यता मानता है। इस विशाल भूखण्ड पर अनगिनत शासकों का अस्तित्व, परस्पर वैमनस्यता, ईर्ष्या-द्वेषयुक्त भावना, छल-कपटभरी कूटनीति, संकीर्ण दृष्टि, विलासितापूर्ण भोगवादी प्रवृत्ति, क्षुद्र स्वार्थो के लिए परस्पर रक्तप्रवाह, जनकल्याणकारी योजनाओं का अभाव, धार्मिक व जातिगत भेदभाव, परम्परागत अन्धविश्वास जैसी कई स्थितियों के दर्शन हम भारतीय इतिहास में पग-पग पर कर सकते हैं।

डॉ. त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यास इस समग्र कथ्य का समर्थन करते हैं।

-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY • The M. S. University of Baroda

-: सन्दर्भ सूची :-

1	जय-विजय	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 248
2	वही		वही	: पृष्ठ - 327
3	वही		वही	: पृष्ठ - 86
4	जहाँदारशाह	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 49
5	वही		वही	: पृष्ठ - 106
6	वही		वही	: पृष्ठ - 224-225
7	वही		वही	: पृष्ठ - 304
8	प्रजाप्रिय प्रजेश	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 32-33
9	वही		वही	: पृष्ठ - 157-158
10	वही		वही	: पृष्ठ - 136
11	दुरभि-सन्धि	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 366-367
12	वही		वही	: पृष्ठ - 368
13	वही		वही	: पृष्ठ - 131-132
14	एक और बेगम	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 49
15	वही		वही	: पृष्ठ - 66
16	वही		वही	: पृष्ठ - 96
17	वही		वही	: पृष्ठ - 137
18	विकलांग	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 63
19	वही		वही	: पृष्ठ - 121
20	वही		वही	: पृष्ठ - 107
21	महाराज	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 16
22	वही		वही	: पृष्ठ - 5-6
23	वही		वही	: पृष्ठ - 5-6
24	वही		वही	: पृष्ठ - 112
25	वही		वही	: पृष्ठ - 180
26	वही		वही	: पृष्ठ - 213
27	वही		वही	: पृष्ठ - 340
28	सम्राट अशोक	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 14
29	वही		वही	: पृष्ठ - 17
30	वही		वही	: पृष्ठ - 33-35
31	वही		वही	: पृष्ठ - 55
32	वही		वही	: पृष्ठ - 325
33	सत्ता और संघर्ष	:	डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी	: पृष्ठ - 8
34	वही		वही	: पृष्ठ - 143